व्याख्यान-सार संग्रह पुस्तकमाला का छठा पुष्प

श्रीमज्जैनाचार्य—

पूज्यश्री जवाहिरलालजी महाराज के

व्याख्यानों में से—

श्रावक का अस्तेय-व्रत

सम्पादक

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के
सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल
रतलाम की ओर से—

पं० शङ्करप्रसादजी दीक्षित

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के
सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल रतलाम।

प्रथम वार २००० | वीराब्द २४५७ विक्रमाब्द १९८८ | मूल्य =)

प्रकाशक—

श्रीसाधुमार्गी-जैन
पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के
सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल,
रतलाम (मालवा)

मुद्रक—
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

किंचिद्-निवेदन

पाठकगण ! लीजिये । मण्डल अपने ध्येयानुसार 'श्रावक का अस्तेयव्रत' नामक छठा पुष्प आपकी सेवा में समर्पण कर रहा है । आशा है, कि आपलोग पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के व्याख्यानों में से प्रकाशित इस पुस्तक से लाभ उठाकर, मण्डल के प्रयत्न को सफल करेंगे ।

पूज्यश्री का व्याख्यान तो साधु-भाषा में और शास्त्र-सम्मत ही होता है, लेकिन संग्राहक सम्पादक एवम् संशोधक महाशय से भूल होना सम्भव है । अतः किसी भूल की ज़िम्मेदारी पूज्यश्री पर नहीं, किन्तु कार्यकर्त्ताओं पर है । यदि कोई सज्जन ऐसी भूल की सूचना देंगे, तो उसपर सहर्ष विचार किया जावेगा । इत्यलम् ।

भवदीय—

रतलाम
प्र० आषाढ़ पूर्णिमा
सं० १९८८

वालचन्द श्रीश्रीमाल — सेक्रेटरी
वरद्भान पीतलिया — प्रेसीडेन्ट

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक मण्डल

सम्मति

मण्डल की पुस्तकों के निरीक्षण का भार, मण्डल के सदस्यों ने मुझको सौंपा है, अतः इस पुस्तक को मैंने आद्योपान्त पढ़ा, तो विदित हुआ कि पूज्यपाद जैनाचार्य गच्छाधिपति जवाहिरलालजी महाराज के मुखारविन्द से फर्माये हुए व्याख्यान के संग्रह में से सम्पादित इस पुस्तक का, सम्पादक ने 'अस्तेयव्रत' जो नाम रखा है, वह यथार्थ है। इसमें दर्शाये हुए सिद्धान्तों का यथार्थ पालन करनेवाला मनुष्य, उभय लोक में सुखी रह सकता है। लेखनशैली में चमत्कार यह है, कि—छोटे-बड़े शिक्षित व साधारण शिक्षित—सब ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

ऐसे समय में, जब कि संसार बेईमानी द्वारा अधःपतन की ओर जा रहा है, ऐसी पुस्तकें समाज को सावधान कर सुमार्ग पर लाने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। आशा है, कि सब सज्जन रतलाम मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का आदर कर लाभ उठावेंगे।

श्रीसाधुमार्गी-जैन शिक्षण-संस्था, उदयपुर

निवेदक—
रत्नलाल महता

श्रावक का अस्तेय-व्रत

विषयारम्भ

शास्त्र मे बताये हुए पाँच व्रतो मे से, तीसरा व्रत 'अस्तेय' या 'अदत्तादान-विरमण' है। अस्तेय या अदत्तादान-विरमण, ''स्तेय' या 'अदत्तादान' के अभाव को कहते हैं। स्तेय या अदत्तादान का अर्थ है, चोरी। चोरी से निवृत्ति के लिये जो व्रत धारण किया जाता है, उसे 'अदत्तादान विरमण' या 'अस्तेय' व्रत कहते हैं।

इस व्रत को धारण करने की आवश्यकता और इससे होने वाले लाभ बताने के पहिले, यह आवश्यक प्रतीत होता है, कि

इस व्रत को धारण करने के लिये जिस चोरी से निवर्त्तना पड़ता है, उसका कुछ रूप बताया जावे। इसलिए पहिले यही किया जाता है।

मन, वचन, काय द्वारा दूसरे के हक्कों को स्वयं हरण करना, दूसरे से हरण करवाना या इनका अनुमोदन करना, चोरी कहलाती है। अर्थात्, जिस पर अपना वास्तविक रीति से अधिकार ही नहीं है,—(फिर वह अधिकार चाहे रहा ही न हो, या था, लेकिन त्याग दिया हो) उस पर बिना उसके स्वामी की आज्ञा के अधिकार करने, उसे अपने काम में लेने, और उससे लाभ उठाने को चोरी कहते हैं।

मनमें, दूसरे के हकों को हरण करने के संकल्प-विकल्प करना, मानसिक चोरी है। वचन द्वारा दूसरे के हक्कों को हरण करना, या दूसरे की वाणी को छिपाना, वाचिक चोरी है। इसी प्रकार, जिन कार्यों के करने से दूसरे के हक्कों को आघात पहुँचता है, दूसरे के हक्को का जिन कार्यों द्वारा अपहरण किया जाता है, दूसरा अपने हक्कों से वंचित रहता है, उन कार्यों की गणना कायिक-चोरी में है।

मन, वचन, और काय के योग द्वारा, दूसरे के हक्कों का अपहरण करना, अपहरण करके उनका उपभोग करना, उनसे

काम लेना, मन, वचन, और काय द्वारा की गई चोरी कहलाती है।

मन, वचन, काय और इनके योग द्वारा, विशेषतः द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की चोरी होती है। द्रव्य से तात्पर्य है, वस्तु का। फिर वह वस्तु चाहे सजीव हो या निर्जीव। क्षेत्र से अर्थ , स्थान का। जैसे, घर, बाग, मार्ग आदि। काल से अर्थ है, मय का। जैसे, शताब्दि, वर्ष, महीने दिन आदि। भाव से अर्थ है, विचार और कार्य का।

चोरी, विशेषतः दो प्रकार की होती है। एक तो वास्तविक मालिक की अनुपस्थिति में या उसकी असावधानी में। जैसे, सेंध काटकर, जेब काटकर, ताला खोलकर, आदि। दूसरी, वास्तविक मालिक की उपस्थिति या सावधानी में। जैसे, डाका डालकर, मार्ग लूट कर आदि।

जिस वस्तु पर, अपना अधिकार ही नहीं है; या जो वस्तु सरे के अधिकार की है, उसे बिना उस वस्तु के स्वामी की आज्ञा और इच्छा के ग्रहण करना, अपने उपभोग में लेना और लाभ उठाना, द्रव्य की चोरी है। फिर वह वस्तु, सजीव—जैसे नुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि—हो, या निर्जीव—जैसे सोना, चांदी, रत्न आदि।

सेंध लगाकर, जेब काटकर, डाका डालकर, मार्ग लूटकर,

ठगकर, जाली नोट हुण्डी, बनाकर, झूठी दस्तावेज बनाकर, राज्य का महसूल चुराकर, ग्राहक से कपट द्वारा अधिक मुनाफा लेकर, पड़ी हुई चीज—फल, रुपया, पैसा आदि दूसरे की मालिकी का जानते हुए उठाकर, आदि उपायो से दूसरे के हकों का अपहरण करना और लाभ उठाना, चोरी है। इसी प्रकार, वस्तु मे संमिश्रण करना, एक वस्तु बताकर दूसरी देना या लेना, कम देना, ज्यादा लेना, घूस देना-लेना. भी चोरी है। ऐसे ही और भी कई उपायो से, द्रव्य-चोरी होती है।

इस सभ्य कहलानेवाले युग में, केवल उन्हीं उपायो से होनेवाली चोरियो की गणना चोरी मे है, जिन उपायो से कि चोरी करने पर, राज्य-नियमानुसार दण्डित हो सके। जिन उपायो से चोरी करने पर राज्य-नियमानुसार दण्डित नहीं हो सकता, उनकी गणना चोरी मे नहीं की जाती। लेकिन, शास्त्रानुसार उन सब कार्य. बात और विचार की गणना चोरी मे है, जिनके द्वारा दूसरे के हकों का अपहरण किया जावे, या उनसे अनुचित फायदा उठाया जावे। आज के कानून ने, कुछ इने गिने उपायों द्वारा दूसरे के हक-हरण को ही चोरी मे मानकर, प्रकारान्तर से, चोरी के दूसरे मार्ग खुले कर दिये हैं। इसलिये, चोरी के भी वे सभ्य उपाय निकले हैं, जिनके द्वारा चोरी करने वाले, दूसरे के हक़ों का अपहरण करने पर भी, राज्य-नियम से

दण्डित नहीं होते। सेंध लगाने, डाका डालने, ठगने, जेब काटने, आदि राज्य-नियम से दण्ड्य उपायों द्वारा चोरी करनेवाले, चाहे दो पैसे की भी चीज चुरावें, तब भी वे, चोर कहाते हैं और राज्य-नियमानुसार दण्डित होते हैं, परन्तु सभ्य उपायों द्वारा चोरी करनेवाले, हजारो, लाखों और करोड़ों रुपयों की चोरी करके भी, साहूकार ही कहलाते है और राज्य-नियम से बचे रहते हैं। ऐसे सभ्य-उपायों द्वारा चोरी करने-वाले लोगों से, जनता की जितनी हानि हो सकती है, उतनी हानि, उन असभ्य उपायों द्वारा चोरी करने वाले लोगो से, शायद ही होती हो। क्योंकि, असभ्य उपाय द्वारा चोरी करने-वाले लोगों से, जनता सावधान रहती है और उनसे अपने हकों की रक्षा करने का उपाय करती है। परन्तु इन सभ्य उपायो द्वारा चोरी करनेवाले प्रतिष्ठित शाह नामधारी लोगों से, जनता सावधान नहीं रहती। इस प्रकार, उन असभ्य उपायो द्वारा चोरी करनेवालो की अपेक्षा, सभ्य उपायो द्वारा चोरी करने-वाले, कहीं अधिक भयंकर हैं। इन सभ्य उपायो में से, कुछ चुने हुए उपाय नीचे दिये जाते हैं।

कई लोग, व्यापार में अपनी स्थिति का झूठा रोब जमाकर, लोगों से माल लाते हैं। व्यवहार करते हैं, और दूसरों का रुपया अपने यहाँ जमा रखते हैं। इस प्रकार दूसरों का धन खींचकर,

झूठा जमा-खर्च करके, एक दम से दीवाला निकाल देते हैं।

कई व्यापारी, अपनी सम्पत्ति के बल से, बाजारों में एक दम से वस्तु का भाव घटा या बढ़ा देते हैं, और इस तरह सारे बाजार पर अपना आधिपत्य जमाकर, दूसरे के हकों का अपहरण करते हैं।

कई व्यापारी, ग्राहक से तो कहते जाते हैं, कि 'ज्यादा ले, सो छोरी छोरा खाय या, गाय खाय'। ग्राहक तो समझता है कि व्यापारी कसम खा रहा है, परन्तु व्यापारी यह कहकर भी वस्तु का मूल्य अधिक लेता है। अधिक ली हुई रकम, छोरा-छोरी या गाय के खाते में जमा कर लेते हैं। लड़के लड़की के खाते की रकम, उनके खाने-पीने विवाह-शादी आदि में लगा देते हैं, और गाय के खाते की रकम, घर में पली हुई गाय के खिलाने पिलाने में खर्च कर देते हैं। यदि, घर के लड़के लड़की या गाय के खर्च से कुछ रकम बच रही, तो उसे छात्रालय गौशाला आदि में देकर चोर होते हुए भी अपनी गणना, दानवीरों में कराने लगते हैं।

कई व्यापारी, अपढ़ ऋण लेने वाले को, एक सौ रुपया देकर, दस्तावेज़ एक शून्य अधिक की—अर्थात् एक हज़ार की लिखवा लेते हैं। इसी प्रकार व्याज, सवान, ड्योढ़ा न आदि में भी छल से दुगुना-तिगुना कर लेते हैं।

कई लोग, किसी सार्वजनिक संस्था या लोकोपयोगी कार्य के लिए धन एकत्रित करके, या तो एक दम से दाब बैठते हैं, या नाम-मात्र के लिये थोड़ा-बहुत कुछ खर्च करके, शेष धन हज़म कर जाते हैं। कोई कोई, ऐसी संस्था या कार्य को, कुछ समय तक—जब तक, कि उसके नाम पर धन प्राप्त होता रहता है—चलाते भी रहते हैं और उसमें से अपना मतलब भी गांठते रहते हैं।

कइयों ने, विज्ञापन बाजी को ही चोरी का साधन बना रखा है। पत्रों, हैण्ड-बिलों आदि द्वारा विज्ञापन करके, लोगों से आर्डर या पेशगी कीमत लेते हैं, परन्तु विज्ञापन के अनुसार न माल ही देते हैं, न कार्य ही करते है। विज्ञापन द्वारा किस तरह चोरी की जाती है, इसके लिये, एक विज्ञापन के विषय में सुनी हुई बात इस प्रकार है:—

एक विज्ञापन बाज ने, मक्खियों से बचने की दवा का विज्ञापन किया। उसने, अपने विज्ञापन में लिखा कि "केवल १ आने के टिकिट भेज देने मात्र से, हम वह दवा भेजते हैं, जिसे भोजन करते समय पास रखने पर, मक्खियें नहीं सतातीं।" लोगों ने, उसके पास एक-एक आने के टिकिट भेजे। विज्ञापक ने, उन टिकिटो में से, तीन पैसे के टिकिट तो अपनी जेब में रखे, और एक पैसे के कार्ड पर, टिकिट भेजने वालों को उत्तर

दे दिया, कि "आप भोजन करते समय, एक हाथ हिलाते जाइये, फिर मक्खियें नहीं सता सकतीं।"

मतलब यह कि आज के कानूनों से असभ्य चोरियों की संख्या चाहे कम हो गई हो, परन्तु सभ्यता की ओट में होने-वाली चोरियों की संख्या में तो वृद्धि ही सुनी जाती है। असभ्य उपायों से चोरी करनेवाले को, राज्य भी दण्डित करता है, और समाज भी घृणा की दृष्टि से देखता है; परन्तु इन सभ्य उपायों से चोरी करनेवाले को, न तो राज्य ही दण्ड देता है, और न समाज में ही वह घृणित माना जाता है। हाँ, ऐसी चोरी करने-वाला, समाज में, 'चतुर' या 'होशियार' अवश्य कहलाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है, कि आज, संसार का अधिकांश समाज चोरी के पाप मे पड़ा हुआ है।

चोरी करनेवालो को दण्ड देनेवालों मे से भी, वहुतो के लिये सुना जाता है, कि वे स्वयं घूसादि के नाम पर हजारों लाखो की चोरी करते हैं। स्वयं तो इतनी वड़ी-वड़ी चोरी करे, और दूसरे को रुपये-आठआने की चीज चुराने पर भी दण्ड दें, यह कैसे उचित कहला सकता है? परन्तु चोरों को दण्ड देते समय उन्हें अपना विचार नहीं होता। वे इस वात को नहीं देखते, कि हम जब ऐसी वड़ी-वड़ी चोरी करते हैं, तव हमको इस छोटी चोरी करनेवाले को दण्ड देने का क्या अधिकार है?

इसके लिये, ईसाई-पुस्तक में वर्णित एक कहानी दी जाती है।

एक बार बादशाह ने, एक चोर को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। प्राण-हरण के लिए बादशाह ने यह उपाय बताया, कि एक मैदान में बहुत से पत्थर एकत्रित किये जावें, और चोर को उस मैदान में खड़ा किया जावे। फिर सारे नगर के लोग चोर को पत्थरों से मारें, और इस प्रकार चोर का प्राण-हरण किया जावे।

बादशाह के आदेशानुसार, एक मैदान में पत्थर एकत्रित किये गये, और ढिंढोरे द्वारा सारे नगर के लोग वहाँ बुलाये गये। चोर को भी, उस मैदान मे खड़ा किया गया। लोगों को, बादशाह का हुक्म सुनाकर कहा गया, कि सब लोग इस चोर को पत्थरों से मारें। बादशाह का हुक्म सुनकर, सब लोग, चोर को पत्थर मारने के लिये तैयार हुए। इतने ही मे, वहाँ ईसा आ गये। चोर को पत्थर मारने के लिए तैयार लोगो को रोककर ईसा ने उनसे कहा, कि इस चोर को वही पत्थर मार सकता है, जो स्वयं चोर न हो। दूसरे के हकों को, जबरदस्ती हरण करना ही चोरी है, फिर चाहे प्रत्यक्ष रूप से दूसरे के हकों को हरण किया जावे, या परोक्ष रूप से और सभ्य उपायों से हरण किया जावे, या असभ्य उपायों से। आप लोग अपने-अपने मन में विचार कर देखें, कि आप स्वयं तो किसी के हकों को हरण नहीं करते? यदि आपलोग भी दूसरे के हकों

को हरण करते हैं, तो फिर इस चोर को पत्थर मारने के अधि-कारी कैसे हैं ? स्वयं वही अपराध करना, और उसी अपराध के लिए दूसरे को दण्ड देना, न्याय नहीं ।

ईसा की उक्त बात का, लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा, कि लोग हाथों से पत्थर डाल-डालकर, अपने-अपने घर चले गये ।

बादशाह के पास ईसा के नाम की पुकार गई, कि ईसा ने पत्थर मारने के लिये आये हुए सब लोगों को भड़का दिया, इससे सब लोग अपने-अपने घर चले गये। बादशाह ने, ईसा को पकड़ मंगवाया और ऐसा करने का कारण पूछा । ईसा ने बाद-शाह से कहा, कि आपने इस चोर को पत्थरो से मारडालने की आज्ञा दी है, परन्तु आप अपने हृदय में भली प्रकार विचार-कर कहिये कि क्या आप चोर नहीं हैं ? प्रत्यक्ष में या परोक्ष में, सभ्य उपायों से या असभ्य उपायों से, दूसरे के हकों को हरण करना ही चोरी है । क्या आप दूसरे के हकों को हरण नहीं करते ? यदि करते हैं, तो क्या आप चोर नहीं हैं ? ऐसी दशा में, आप इसे पत्थर मारकर मार डालने की आज्ञा देने के अधि-कारी कैसे रहे ? आप पत्थर मार-मारकर चोरी को ही क्यों नहीं मार डालते ? आप अपनी चोरी को तो मारते नहीं, और इस चोर को मारडालने की आज्ञा देते हैं, यह कहाँ का न्याय है ?

ईसा के उक्त कथन का, बादशाह पर भी बहुत प्रभाव पड़ा ।

उसने, पश्चात्ताप किया और ईसा को छोड़ने के साथ ही चोर को भी छोड़ दिया।

मतलब यह, कि जब तक कोई स्वयं चोरी करता है, तब तक वह दूसरे को दण्ड कैसे दे सकता है? दूसरे से, किसी बात का पालन करवाने के लिये, पहिले स्वयं उसका पालन करना अत्यावश्यक है। आप स्वयं भी चोरी करे, और दूसरे को चोरी के ही लिए दण्ड दें, यह न्याय नही कहला सकता।

जीवधारियो की चोरी भी, द्रव्य की चोरी में शामिल है। किसी जीवधारी पर उसकी स्वयं की, या वह बेसमझ है, तो उसके अभिभावक-स्वामी आदि की, आज्ञा के बिना अपना अधिकार करना, उसके द्वारा किसी रूप में लाभ उठाना, चोरी है। जैसे पशु, पक्षी, स्त्री, बालक, आदि को बिना उनके स्वामी की आज्ञा के अपने अधिकार में करना, उन्हे बेंचकर या दूसरी तरह उनसे फायदा उठाना, चोरी है।

द्रव्य-चोरी के ऐसे ही और भी कई मार्ग है, जिनका वर्णन यहाँ विस्तार भय से नहीं किया जाता है।

किसी के घर, बाग, खेत, मार्ग, गाँव, देश या राज्य पर बिना उसकी आज्ञा के अधिकार करना, अपने काम में लेना या किसी प्रकार का फायदा उठाना, क्षेत्र की चोरी है। अपने वैभव

की अभिलाषा से अनुचित लडाई करके दूसरे के राज्य, गॉंव, देश, खेत, घर, बाग आदि को छीनना भी, क्षेत्र की चोरी है।

वेतन, किराया, सूद, कमीशन आदि देने लेने के लिये, समय में न्यूनाधिक बताना, काल की चोरी है।

भाव की चोरी की व्याख्या बहुत विस्तृत है इसलिए संक्षिप्त में बतलाई जाती है।

किसी कवि लेखक या वक्ता के भावों को लेकर उन पर अपना रंग दे, अपने बताना, किसी के उपकार को न मानना, शास्त्र या ग्रन्थ के किसी भाव को पलटना या छिपाना और उनके नाम पर अनुकम्पा को पाप मे बताना दूसरे का उपकार न करने के लिये लोगों को उपदेश देना; आदि कार्यों की गणना भाव-चोरी में है।

जिस प्रकार—

माद्दह किंचि दाणं।

प्र० व्या० मू०

अर्थात्—जरा भी दान मत दो।

इस कथन की गणना झूठ में की गई है, इसी प्रकार बहुत से कार्यों की गणना चोरी में भी की गई है। जैसे, अदत्तादान विरमण व्रत का उपदेश करते हुए प्रश्न-व्याकरण-सूत्र मे कहा है—

परपरिवाओ परस्स दोसो परवन्नएसेणं
जंच गिण्हेति परस्स नासेइ जं च
सुकयं दाणस्स य अंतराइयं दाणस्स
विप्पन्नासे पेसुण्णं .चे व मच्छरितांच

अर्थात्—इस व्रत को धारण किया हुआ, दूसरे की निन्दा न करे, दूसरे के दोष न निकाले, दूसरे से द्वेष न करे, दूसरे के नाम पर लाई हुई वस्तु आप न भोगे, दूसरे के सुकृत सच्चरित्रता और उपकार का नाश न करे, दूसरे को दान देने में विघ्न न करे और दूसरे के गुण असह्य न माने। क्योंकि ऐसा करना चोरी है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

तवतेणवयतेणे रूवतेणे य जे नरे।
आयार भावतेणे य कुव्वइ दव्व किव्विस ॥

अर्थात—जो आदमी तप, अवस्था, आचार, और भाव को छिपाता है, दूसरे के पूछने पर स्पष्ट नहीं कहता, वह—साधु होने पर भी—किल्विष (नीच) देव की योनि में उत्पन्न होता है।

गीता में कहा है—

तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एवसः।
अ० ३

अर्थात्—अपने पर जिसका उपकार है, जिससे अपने को सहायता मिली है, उसे बदला न चुकाना, चोरी है।

जिस वस्तु की कमी से दूसरे को हानि पहुँचती है, उस वस्तु का आवश्यकता से अधिक उपभोग करना भी, एक प्रकार की चोरी है। क्योंकि, उस वस्तु का अधिक उपभोग करनेवाले को भी हानि पहुँचती है, और वह चीज दूसरे को नहीं मिलती, इसलिये दूसरे की अन्तराय भी आती है। इसी प्रकार और भी बहुत से कार्यों की गणना भाव-चोरी में है।

प्रश्न—व्याकरण-सूत्र में, चोरी के निम्न तीस नाम बताये हैं—

तस्सयणामाणि गोणाणि होंति तीसं तंजहा-
चोरिक्कं[1] परहडं[2] अदत्तं[3] कुरिकडं[4] परलाभो[5] असंजमो[6] पर-
धणामिगिद्धी[7] लोलिको[8] तक्करत्तणातिय[9] अवहारो[10] हत्थल-[11]
हुत्तणं पावकम्मकरणं[12] तेणिको[13] हरणविप्पणासो[14]
आदियणा[15] लुंपणाधणाणं[16] अप्पचओ[17] उवीलो[18] अक्खेवो[19]
क्खेवो[20] विक्खेवो[21] कूडिया[22] कुलमसीय[23] कंखा[24] लाल-
प्पणपच्छणाय[25] आसासणायवसण[26] इच्छामुच्छाय[27]

तएहा[२८]गिद्धि नियडिकम्मं[२९] अवराच्छिन्नाविया[३०] तस्स-
एयाणि एव मादीणि नामधेज्जाणि हूंति तीसं ॥

अर्थात्—गुणानुसार चोरी के तीस नाम बताये जाते हैं।
वे ये हैं—'[१]चोरी, दूसरे के हकों को हरा जाता है, इसलिये
'परहृत'[२]; बिना दियाहुआ दूसरे का द्रव्य लिया जाता है, इस-
लिये 'अदत्त'[३] क्रुर मनुष्यों द्वारा सेवित होने से 'क्रूरकृत'[४];
दूसरे के धन से लाभ लिया जाता है, इसलिये 'परलाभ[५];
संयम नाशक होने से 'असंयम'[६] दूसरे के धन में
लोलुपता होने से 'पर धनगृद्धि'[७], दूसरे के धन के लिये
चंचल रहने से 'लौल्य'[८]; दूसरे का धन चुराया जाता है, इस-
लिये 'तस्करत्व[९]; दूसरे का धन हरण किया जाता हैं, इसलिये
'अपहार'[१०] यह कार्य हाथ की चालाकी से होता है, इसलिये
'हस्तलत्व'[११], यह पाप कर्म कराता हैं, इसलिये 'पापकर्मकरण'[१२],
अस्तेय का नाशक है इसलिये 'स्तेय'[१३] दूसरे का द्रव्य नाश
किया जाता है, इससे 'हरणविप्रणास'[१४], दूसरे का धन लिया
जाता है, इसलिये 'आदान'[१५], दूसरे के धन का लोप किया जाने
से 'धनलोपन'[१६]; अविश्वास का कारण होने से 'अप्रत्यय,'[१७] दूसरे
को पीड़ा देने से 'अवपीड़'[१८]; दूसरे के धन को छीन लेने से

[१९]'आक्षेप' [२०]'क्षेप' [२१]'विक्षेप' छल कपट युक्त होने से, [२२]'कूटता' कुल का कलंक बनाने से [२३]'कुलमसि' दूसरे के धन की लालसा होने से [२४]'कांक्षा'; इसे छिपाने के लिये दूसरे की प्रार्थना करनी पड़ती है और दीन वचन बोलने पड़ते हैं, इससे [२५]'लालपन-प्रार्थना' दुःख का कारण होने से [२६]'व्यसन' दूसरे के धन में लोलुपता होने से [२७]'इच्छा-मूर्छा' तथा [२८]'तृष्णा-गृद्धि' माया सहित होने से [२९]'निकृति-कर्म' और किसी के सामने दूसरे का धन न लेने से [३०]'अप्रत्यक्ष' नाम हैं। मित्र-द्रोह आदि पापों से भरे हुए अदत्तादान के, ऐसे ही और अनेक नाम हो सकते हैं।

चोरी क्यों और कौन करते हैं ?

चोरी करने का अन्तरंग-कारण है, द्रव्य-लोलुपता। उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन में कहा है—

रूव अतित्तेय परिग्गहेय,
सत्तो व सत्तो न उवेइतुट्ठिं।
अतुट्ठि दोसेण दुहीपरस्स,
लोभाविले आययइ अदत्तं॥

अर्थात—रूप की ओर से जिसे सन्तोष नहीं है। यानी जो रूप और रूपवान परिग्रह में अत्यन्त आसक्त हो गया है, और जिसे इनके संग्रह की सदा लालसा बनी रहती है, वह, लोभ का मारा हुआ, तथा असन्तोष के वेग से व्याकुल होकर, दूसरे की चोरी करता है।

यही बात शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श के लिये भी कही है। यानी, जो इनका लोभी हो गया है, वह इनकी प्राप्ति के लिये, चोरी करने में भी संकोच नहीं करता। मतलब यह, कि विषय-सुख का लोभ होना, उनमें आसक्ति होना ही चोरी का अन्तरंग कारण है।

चोरी के वाह्य कारणों में से, पहिला कारण है—लोगों की बेकारी और उनका भूखों मरना। बेकार लोग, भूखों मरते अपने पेट की ज्वाला बुझाने के लिये चोरी का आश्रय लेते हैं। पेट की ज्वाला से पीड़ित लोग, उचित अनुचित उपायों का ध्यान नहीं रखते, किन्तु जिस तरह बनता है, उस तरह दूसरे का धन-हरण करके अपने पेट की ज्वाला बुझाते हैं। समाचार-पत्रों के देखने से प्रकट है, कि केवल भारत में ही प्रति-वर्ष सैकड़ों मनुष्य बेकारी से घबराकर आत्म-हत्या कर लेते हैं। बेकार होने पर भी, जो लोग चोरी को बुरी समझते हैं, वे आत्म-हत्या कर डालते हैं। मतलब यह, कि चोरी करने के कारणों में से एक कारण बेकारी है।

बेकारी बढ़ाने में, मुख्यतः कारखानों का हाथ है। जिस काम को करके लाखों-करोड़ों आदमी अपना भरण-पोषण करते थे, कारखानों के होनेपर उन लाखों करोड़ों की आजीविका कुछ ही लोगों को मिलती है। इस तरह, कारखानों से बेकारी बढ़गई है।

बेकारी बढ़ने का दूसरा कारण है, देश के वाणिज्य और कला-कौशल का कष्ट होना। जब देश का वाणिज्य और कला-कौशल नष्ट हो जाता है, तब उनके द्वारा आजीविका चलानेवाले लोग बेकार होकर भूखों मरते, चोरी करने लग जाते हैं।

बेकारी के ऐसे ही और भी कई कारण हैं, जिनका वर्णन करना अनावश्यक है।

चोरी के वाह्य कारणों में से, दूसरा कारण फ़िजूल खर्ची है। फ़िजूल खर्ची में पहिला नम्बर जुए का है। सट्टा, फाटका, लॉटरी, सौदा, शर्त्त आदि जुए के ही रूप हैं। आलसी लोग, बिना कमाये धन पाने की आशा में दूसरे उद्योग छोड़कर, जुआ खेलने लगते है। जब वे अपनी सम्पत्ति को उसमे स्वाहा कर देते हैं, तब चोरी करने लगते हैं। प्रारम्भ में तो ऐसे लोगों की चोरी अपने ही घर तक रहती है, परन्तु जब घर में दाल नहीं गलती या कुछ नही रह जाता, तब वे दूसरे के धन पर हाथ साफ करने लगते हैं।

फ़िज़ूल खर्ची में, दूसरा नम्बर अन्य दुर्व्यसनों का है। यानी, शराब, गाँजा भंग, तमाकू, चर्स, रण्डीबाजी, आदि अन्य बुरे-कार्यों का व्यसन होना। दुर्व्यसनी को जब दुर्व्यसनों के लिये पैसा नहीं मिलता, तब वह चोरी करने लगता है।

फ़िजूलखर्ची में तीसरा नम्बर सामाजिक-कुप्रथा का है। समाज में जब यह नियम होता है, कि विवाह, शादी, नुकते या

किसी और काम में इतना खर्च करना ही चाहिए, या इतना रुपया, इतना ज़ेवर इतना कपड़ा होने पर ही विवाह हो सकता है, या अमुक वस्तु और इतनी रसोई देनी ही चाहिए, तब इस कुप्रथा और फ़िज़ूल खर्ची का पोषण करने के लिये भी लोग चोरी करने लगते हैं। यह बात दूसरी है, कि ऐसे लोग असभ्य उपायों से दूसरे के हक़ों को हरण न करके सभ्य उपायों से हरण करें, परन्तु ऐसा करना भी तो चोरी ही है। मतलब यह, कि फ़िज़ूल खर्ची भी चोरी का एक कारण है।

चोरी के बाह्य कारणों में से तीसरा कारण है, यश कीर्त्ति या बड़ाई की चाह। इस कारण से चोरी करनेवालों में, पहिला नम्बर उन लेखक, वक्ता और कवि का है, जो अपनी बड़ाई के लिये, दूसरे के लेख, कविता और भावों को चुराकर, उसी रूप में या कोई दूसरा रंग चढ़ाकर अपने नाम से प्रसिद्ध करते हैं, दूसरा नम्बर है, उन सेठ साहूकार अमीर रईस और राजाओं का, जो दूसरे के धन को चोरी के उपायों से हरकर केवल यश कीर्त्ति के लिए, विवाह शादी मिहमानी भ्रमण आदि में खर्च करते हैं, या दानी बनने के लिये, संस्था आदि को दान देते हैं। इसी तरह जो दूसरे का राज्य छीनकर अपने को वीर और दूसरे का रोज़गार मारकर अपने को बड़ा व्यापारी प्रसिद्ध करने के इच्छुक रहते हैं। तीसरा नम्बर है, उन साधु-सन्त कहलानेवालों

का; जो केवल प्रशंसा और प्रतिष्ठा के लिये अपने आपको, आचार-भ्रष्ट होने पर भी उत्तम साधु; स्थविर न होने पर भी अपने को स्थविर; तपस्वी न होने पर भी अपने को तपस्वी; और विद्वान् न होने पर भी अपने को विद्वान् बताते हैं। मान वड़ाई के लिए, और भी वहुत लोग वहुत रूप से चोरी करते सुने जाते हैं, जिनका वर्णन विस्तार भय से नहीं करते हैं।

चोरी का चौथा कारण है, स्वभाव। अशिक्षा और कुसंगति के कारण वहुत लोगों का स्वभाव ही ऐसा हो जाता है, कि उनके पास किसी प्रकार की कमी न होने पर भी, या दूसरा रोजगार मिलने पर भी, वे लोग चोरी करना अच्छा समझते है और चोरी करते हैं।

चोरी का सब से वड़ा बाह्य-कारण अराजकता है। राज्य द्वारा जब भूखो मरते हुओ की व्यवस्था नहीं की जाती, दुर्व्यसन नहीं मिटाये जाते, सामाजिक कुप्रथाओं, तथा मान-वड़ाई के लिये चोरी करने वालो को नहीं रोका जाता और शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया जाता, तब चोरी होना स्वाभाविक है।

चोरी, कौन और कैसे करते हैं तथा चोरों में किन लोगों की गणना है, इसके लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है—

अदिएणा दाणस्स पाव कलि कलुस, कम्म वहुलस्स अणेगाइं तंच पुण करेति चोरियं, तक्करा,

परद्व्वहरा, छेयाकय, करण, लद्धलक्खा, साहसिया, लहुसग्गा, अतिमहीत्था, लोभघच्छा, दद्दर, उव्वील गायगिद्धिया, अहिमरा, अणभंजगा, भग्गसंधिया, रायदुट्टकारिय, विसयणिच्छुढ, लोकवज्भा, उद्दहका, गामघायक, पुरघायक, पंथघायक, आलिवग, तित्थ-मया, लहुहत्थसपउत्ता, जूयकरा, खंडकरक्खत्थी, चोर, पुरिसा चोर संधिच्छेयगाय, गठिभेदगा, पर धनहरण, लोमावहारं, अक्खेवी, हडकारग, निम्मद्दग गूढचोर, गोचोर, अस्सचोरक, दासिचोराय, एक चोराय उकड्डग, सपदायक, उच्छिपक, सत्थघायक, विलकोलीकारकाया, निग्गह विलुंपका वहुविहतोणि-कहरण वुद्धी, एतय अणणेय एवमादी।

अर्थात्—दूसरे का धन हरण करने मे दत्त, इसके लिये अवसर के जानकार तथा साहस रखनेवाले और हाथ की सफाईवाले ही लोग, चोरी करते हैं। अपने स्वरूप को छिपा, वातों का आडम्बर वना, मधुर-मधुर बोलकर दूसरे को ठगने वाला चोर है। जिसका आत्मा तुच्छ है, जिसकी धन-लालसा वढ़ी हुई है, जो देश या समाज से वहिष्कृत है। जिसे मर्याद भंग करने में संकोच नहीं है, जो जुआ खेलता है, चोरी में वाधा देनेवाले की या जिससे धन मिलने की आशा है उसकी, घात करने में जिसे भय संकोच नहीं होता, अपने

साथियों की घात करने में भी जो नहीं हिचकिचाता और ग्राम, नगर, जंगल आदि को जला देता है, वह चोरी करता है। जो ऋण लेकर, फिर, लौटाना नहीं जानता, जो सन्धि भंग करता है, जो सुव्यवस्था रखनेवाले राजा का बुरा चाहता हैं, साधु—साध्वी, श्रावक—श्राविका में जो भेद डालता है और चोरी करनेवालों को उनके चोरी के कार्य में किसी रूप से सहायता देता है, वह चोर है। चोर लोग, ज़बरदस्ती या गुप्त रहकर, और वशीकरणादि मन्त्रों का प्रयोग करके, गांठ काट-कर, तथा और भी दूसरे उपायों से दूसरे का धन स्त्री, पुरुष, दास, दासी, गाय, घोड़ा, आदि हरण कर लेते हैं। इसी प्रकार, राज-भण्डार तोड़कर भी धन हरण करते हैं।

परस्स दव्वाहिं जअविरया, विपुल वल परिग्गहाय, बहवें रोयाणा, पर धणंमि गिद्धा, सएवदव्वे असं-तुट्ठा, परविसए अभिहणंति तुट्ठा, परधणस्सकज्जे, चउरंगसमत्त, बलसमग्गा, निच्छय वरजोह जुद्ध-सज्जिया, अहमहामिति, दप्पिएहिं, सेन्नेहिं संपरिवुडा, पओम सगड सूइचक्क सागर गरुल वुहादिएहिं अणि-एहिं उच्छरता, अभिभूयहणंति परधणाइं।

अर्थात्—दूसरे के धन को हरण करने के प्रत्याख्यान रहित, विपुल बल परिवारवाले, अपने धन में सन्तोष न मानने-वाले और दूसरे के धन का लोभ रखनेवाले, बहुत से राजा

लोग; दूसरे राजा के देशों को नष्ट करके धन हरण करने के लिये, युद्ध के निमित्त चतुरंगिणी सेना सजा और 'पहिले मैं ही विजय करलूं', ऐसा दर्प रखनेवाले उत्तम योद्धाओं को लेकर, तथा व्यूह बनाकर, दूसरे के बल को नष्ट करके उसका धन हरण करते हैं।

पर द्व्व हरानरा, निरणुकंपया निरवयक्खा गामागर णगर खेड कवड मंडव दोणमुह पट्टण सम णिगम जणवय तेय धण समिद्धे हणंति थिरहिताय छिन्नलज्जा वंदिग्गह गोगहयगिण्हंति दारुणमती णिक्किंवाणियंहणंति छिंदिंतिगेहसंधि णिक्खित्ताणिय हरंति धणधण्णदव्वजाताणि जणवयकुलाणाणिग्धिणमती, परस्सदव्वेहिं जे अविरया, तहेवकेई अदिण्णादाणं गवेसमाणा काला काले सुसंचरंता वितकापज्ज्लित सरसदरदड्ढकाड्ढियकलेवरे, रुधिरालित्तवदण अक्खयखातिय पति डाइणि भयकर जंबूयखिक्खियचे घुयकय घोर सद्दे, वेतालुट्ठित निसुद्धकह कहेय पहसिय विहणगं निरभिरामे अतिदुब्भिगंधे त्रिभत्थ दरसणिज्जे ससाणे वण सुण्णघरलेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुला सुवसहीसु किलिस्संता सीतातव सोसिय सरीरदड्ढच्छीव निरय तिरय भव संकडं दुक्खसंभार वेदणिज्जाणि पावकम्माणि

संचिणंता दुल्लभ भक्खण पाण भोयण पिवासिता भुंजिता किलतामस कुणिम कदमूलजकिंचि कयाहार उव्विग्गा ओफ्फता असरणा अडाववासउवेति वालसय संकणिज्ज भयंकरा अमसकरा तक्करा कसहरामोत्ति अज्जदव्वंइति सामत्थं करेंति गुज्झं, बहुयस्सजणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरामत्तप्पमत्त-प्पसुत वीसत्थ छिद्दघाती वसणब्भूदएसु हरणबुद्धि विगव्व रुहिर महियापरेतित्ति नरवति मज्जाय मति-कंता सज्जणजण दुगंछिता सकम्मेहि पावकम्मकारी असुभपरिणयाय दुक्खभागी निच्चाउल दुहमणिव्वु-इमणा इहलोए चेव किलिस्संता, परदव्वहरा नरा वसणसय समावण्णा ॥

अर्थात—अनुकम्पा और परलोक के डर से रहित चोर लोग, ग्राम नगर खदान आश्रम आदि तथा समृद्ध देशों को लूट लेते हैं और उन्हे नष्ट कर डालते है। चोरी करने में स्थिर हृदय और दारुण बुद्धिवाले निर्लज्ज लोग, लोगों के घर में संध फोडकर, घर मे रखे हुए धन-धान्यादि का हरण करते हैं, और सोये हुए गाफिल लोगों को लूट लेते है। धन की खोज मे ऐसे लोग, काल अकाल और जाने न जाने योग्य स्थान का विचार नहीं करते, किन्तु जहां रक्त की कीच हो रही हैं, मृतकों के शव रक्त से भीजे हुए पड़े है, प्रेत, डाकिनी-

शाकिनी आदि घूमती हैं और शृगाल उलूकादि भयानक पशु पक्षी शब्द करते है—ऐसे घोर श्मशानों मे, सूने मकानों में, पर्वत की गुफाओं में, तथा जहां सर्पादि भयंकर जानवर रहते है, ऐसे विषम जंगलों मे रहकर शीत ताप की पीड़ा सहते है और यही चिन्ता किया करते है, कि किसका धन हरण करें। ऐसे स्थानो में रहते हुए, ये लोग भूख लगने पर कभी तो लड्डू भात मदिरा आदि का भोजन-पान करते है, और कभी, कन्द मूल मृतक-शरीर, या जो कुछ मिल जावे, वही खा लेते है। जिस प्रकार भेड़िया खून की तलाश में इधर-उधर घूमता फिरता है, उसी प्रकार चोर लोग भी पराये धन की तलाश में इधर-उधर घूमते फिरते है और नर्क तिर्यंच योनि मे होने वाले कष्टो को, वे निरन्तर यहीं भोगते है। चोरी करनेवाले लोग, सज्जनों से निन्दित है, पापी है, राजाज्ञा-भंजक हैं, प्राणियों के दुःख के कारण है और मानसिक चिन्ताओं तथा इसी लोक में सैकड़ो दुःखों से युक्त हैं।

चोरी क्यों त्याज्य है ?

चोरी, महा नीच-कर्म है । इस नीच काम में प्रवृत होने-वाले की इन्द्रियें और मन सदा चंचल रहता है, जो धर्म-मार्ग मे बाधक है । क्योंकि, धर्म में इन्द्रियो और मन के एकाग्र होने की आवश्यकता है । चोरी करनेवाले की इन्द्रिये और मन संयम में नहीं रहते, इससे वह धर्म से सदा दूर रहता है ।

चोरी करनेवाले की वृत्तिये ऐसी खराब हो जाती हैं, कि संसार के किसी भी नीच-कार्य से उसे घृणा नहीं होती । उसकी वृत्तिये निरन्तर पापों में ही जाती हैं । प्रेम, दया, अहिंसा आदि गुण चोरी करनेवाले के पास नहीं रहते ।

चोरी की निन्दा करते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है—

जंबू ! ततियंच अदत्तादान हरहो दह मरण भय कलुस तासण परसंति गाभिज्ज लोभमूल काल वि-

सम संसिय अहोत्थिण तण्हा पत्थाणपत्थो अकित्ति-
करणं अणिज्ज छिद्दमतर विधुर वसण मग्गण उस्स-
वमत्त पमत्ता पसुत्त वंचणाक्खिवण घायण परा-
णिहुय परिणाम तक्करजण बहुमयं अकलुणं रायपुरिस
रक्खियं सयासाहुगरहणिज्जं पियजण, मित्तजण
भेद विप्पीत कारगं रागदोस बहुलं पुणोयओपुर
समर डमर कलिकलह वेह करणं दुग्गति निणिवाय
वड्ढणं भवपुणब्भवकरं चिरंपरिचियं अणुगयं दुरंत
तइयं अहम्मदारं ॥

अर्थात्—हे जम्बू ! तीसरा आश्रवद्वार अदत्तादान यानी नहीं दिये हुए धनादि को ग्रहण करना है। यह अदत्तादान, हरण करना, जलाना, मरना, भय पाना, आदि पापों से लिप्त है। अदत्तादान की उत्पत्ति दूसरे के धन में रौद्र ध्यान सहित मूर्छा होने से है। यानी, धन से जिसकी तृष्णा नहीं मिटी है, वही चोरी करता है। चोरी करनेवाले लोग, आधीरात तथा पर्वतादि विषम स्थानों तक का आश्रय लेते हैं, और उत्सवादि में गाफिल तथा सोये हुए को लूट लेना, ठग लेना, दूसरे के चित्त को व्यग्र करना, दूसरे को मार डालना, चोरी करने-वालों का काम होता है। यह चोरी-कार्य, राग-द्वेष से पूर्ण दया से रहित, आर्यजनों तथा साधुजनों से निन्दित और तस्करों को बहुत प्रिय है। अदत्तादान, भय से भागने, अकीर्त्ति, वध,

नाश, संग्राम, प्रियजनो तथा मित्रजनों की अप्रीति और जन्म-मरण का कारण है। यह कार्य, दुःखों के प्रवेश करने का छिद्र है। राजपुरुष इस कार्य की निगरानी करते है और इसके करने-वाले को राजादि द्वारा दण्ड प्राप्त होता है। इसका फल दारुण है, यह पाप का उपाय है, इसलिये इस कार्य को आश्रवद्वार कहते है।

चोरी करनेवाले की कीर्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे आदमी का विश्वास करना तो दूर रहा, लोग उसके पास भी खड़े नहीं रहते; बल्कि उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। चोरी करनेवाले की इसलोक और परलोक में जो दुर्गति होती है, उसका वर्णन करते हुए, प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है—

एवमादीओ वेयणाओ पावा पावंति दंतिं दिया-वसट्टा बहुमोह मोहिया पर धणंमिलुद्धा फासिंदिय विसयतिव्व गिद्धा इत्थिगय रुवसद्दरसगंध इट्ठरतिम-हित भोगत एहाइयाय धण ।समागहियाय जे नर-गणा पुणरविते कम्मदुवियढा उवणीया राय किंकराणं तेसिंवध सत्थग पाढयाणंविलउलींकारगाणं लंचसय गेएहगाणं कूडकवडमायानियडि आयरण पणिहिं वंचणविसारयाणं बहुविह अलियसय जपकाणं पर-लोप॰र मुहाणं निरयगतिगामियाणं तेहिय आणत-

जियदंडा तुरियं ओग्घाडिया पुरवरंहि सिंघाडग तिकचउक्क चच्चर महापहपहेसु वेत्तदंड लकुट कट्ट लेट्ट पत्थरपणालि पणोलिया मुट्ठिलया पादपरिह जाणुकोप्पर पहार संभग्गह मथितगत्ता ॥

अर्थात्—कर्म से पराभव पाये हुए लोग, अपनी इन्द्रियों को संयम में नहीं रख सकते, तब, शब्द रूप रस गंध स्पर्श के विषय लोलुप बनकर, इनके मोह में मुग्ध होकर, तथा दूसरे के धन में लोभ-तृष्णा बढ़ी हुई होने से, ठगकर, झूठ बोलकर, और सेंधादि द्वारा दूसरे का धन हरण करते है। तब उन नर्क गामी चोरों को पकड़कर, राजपुरुष अपने अधीन करते हैं, बांधकर प्रसिद्ध प्रसिद्ध मार्गों से घुमाते हैं, और लात-घूसे, जूते, लकड़ी आदि से मारते है।

अघण्णा सुलाग्गाविलाग्ग-भिण्णदेहा तेयतत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा उल विज्ञंति रुक्खसालेहिं केइकलुणाइ विलवमाणा, चउरंचउरंग धणियबद्धा, पव्वय कडगा पमुच्चंते दुरप्पायबहुविसमपत्थरसहा अणेगगय चलण, मलणनिम्मद्दिया कीरंति पावकारी अट्ठारसखंडियाय कीरांति मुंडपरिसुहिं केइउक्खित्त कण्णोट्टनासा उप्पाडिय नयण दसण वसणा जिब्भिंदियाछिया छिण्णकण्णसिरा पणिज्ञति छिज्ञंतिय असिण निव्विसया, छिण्णहत्थपायाय पमुच्चंति जावजीव बंध-

णाय कीरंति केइ परदव्व हरणलुद्धा कारग्गल नियल जुयल रुद्धा चारगायहत्त मारासयण विप्पमुक्कि मित्तजण निराक्किया निरासा बहुजण धिक्कार सद्दलज्जा विया अलज्जा अणुबद्ध खुहा परद्धसीउण्हे तण्ह वेयस्स दुहट्ट घाट्टिय विमन्नमुह विच्छविया विहल मइल दुब्बला किलंता खासंता वाहियाय आमाभिभूयगत्ता परूढ़ नहकेस मंसुरोमाछिगमुत्तांग णियगंमिखुत्ता तत्थेवमया अकामका बंधिऊण्ण पाए सुकड्ढिया खाइ-याएछूढा तत्थय विगसूणगासियाल कोल मज्जार चंदसंडा सतुंडपक्खिगण विविह मुहसय विलुत्तगत्ता कयाविहंगा केइकिंमिणाय कुथियदेहा अणिट्ठ वय-णेहिं सप्पमाणा सुट्ठकयं जम्मउत्ति पावोतुट्ठेण जणेणं हम्ममाणा लज्जावण कायहोंति समणस्सविय दहिकालं मयासंता ॥

अर्थात—राजपुरुष, कई चोरों को शूल के अग्रभाग में और कई को वृक्ष में लटकाते है। कइयों के हाथ पैर बाँधकर, पर्वत से गिराते है। कई को, हाथी के पैर से कुचलवाकर मरवा डालते है। कइयों के सिर, कइयों के अंग, नाक, कान, ओंठ, जीभ काट डालते हैं, दाँत तोड़ डालते है, नाड़ियें उखड़वा लेते है और आँखें निकलवा लेते हैं। कई चोरों को, तलवार से टुकड़े-टुकड़े करवा डालते है। कइयों की सम्पत्ति जब्त करके, देश

से निकाल देते हैं। कइयों को, अपने परिवार तथा मित्रजन से अलग करके, गुप्तस्थान मे रखते है। कइयों को, जन्म भर के लिये बन्दीखाने में डाल देते हैं, जहाँ नख, बाल बढ़ जाते हैं, शीत, उष्णता, तृषा, आदि की पीड़ा से, मुख मलीन पड़ जाता है, शरीर दुर्बल तथा कान्तिहीन हो जाता है और रोग घेर लेते हैं। इस अवस्था में रहने के कारण, कई कुष्टादि व्याधि को भी प्राप्त होते हैं। अनिच्छा-पूर्वक मरे हुए चोरों के शव को, पैर बँधवा तथा घसिटवाकर, राज-कर्मचारीगण किसी खांई खन्दक में डलवा देते हैं, जहाँ सियाल, कुत्ता, गिद्ध, बिलाव आदि मांस-भक्षी पशु-पक्षी, मुख से नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। चोरों की यह दशा होजाती है, तब भी लोग उनके लिये दुर्वचन बोलते हैं और कहते हैं कि-यह पापी इसी योग्य था, अच्छा हुआ जो मर गया। चोर लोग, अपने नाम को कलंकित बना लेते है, जिससे उनके स्वजनों को दीर्घकाल तक दुःख होता रहता है।

यह तो चोरी करने के।कारण इस लोक में होनेवाले कष्टों का संक्षिप्त वर्णन हुआ। परलोक में होनेवाले कष्टो का वर्णन करते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है—

पुणोय परलोयसमावन्ना नरगे गच्छंति निराभिरामे अंगार पलित्तककप्पं अच्चत्थ सीतवेयणा अस्साउदेएण सततं दुक्ख भय समभिभूए ततोविउव्वट्टिया समाणा पुणो विउत्पज्जंति तिरिय जोणिं तहिंपिनि-

रओवमं अणुभवंति वेयणंति अणंत कालेण जतिणाम कहिंविमणुय भावंलहंति णेगेहिं णिरयगतिगमण तिरियभवसय सहस्स परियट्टएहिं तत्थवियभवंता अणारिया निच्चकुलसमुप्पएणा आयरियजण लोग- वज्झातिरिक्ख भूयाय अकुसला काम भोग तिसिया जहिं जहिं निबंधंति णिरयवत्तणि भवप्पवंचकरण पुणोवसंसारवतणे ममूले धम्मसुतिविवज्जिया अण- ज्जा कूरा मिच्छित्तसुति पवणायहोति एगंतदड रुइणो वे वेढंता कोसिकार कीडोव्वअप्पगं अट्ठकम्मततु घण- वंधणेणं एवं नरगातिरिय नरं अमर गमण पेरंत चक्कवालं जम्मण जरा मरण करण।

अर्थात्—चोरी करने वाले लोग, मर कर नर्क में जाते हैं। नर्क, आनन्ददाता स्थान नहीं होता है, किन्तु उसमे कहीं तो धधकती हुई आग रहती है और कहीं अत्यन्त शीत। ऐसे नर्क मे उन्हे अनेकों कठिन दुःख भोगने पड़ते है। वहुत काल तक वहॉ रह चुकने के पश्चात, वे तिर्यकयोनि में जन्म पाते है, जहां नर्क के ही समान दुःख होता है। चोरी करने वाले लोग यदि अनन्तकाल के पश्चात् मनुष्य-भव पाते भी हैं, तो अनेकों बार नर्क-तिर्यक्-योनि में परिभ्रमण कर चुकने पर मनुष्य-जन्म पाते हैं। मनुष्य-जन्म में भी वे सुखी नहीं होते, किन्तु या तो अनार्य जाति में उत्पन्न होते हैं, या आर्यजाति के ऐसे कुल में जन्म

लेते है, जिससे लोग घृणा करते हैं । इस प्रकार मनुष्य-योनि पाकर भी, वे पशु तुल्य कष्ट भोगते हैं । मनुष्य-योनि में भी वे तत्त्वज्ञान नहीं पाते, क्योंकि, वे शास्त्र-विरुद्ध तत्त्व के उपदेशक, एकान्त हिंसा में श्रद्धा रखने वाले, और काम भोग की बहुत लालसा वाले होते हैं । मनुष्य-भव में भी वे लोग, नर्क जाने के ही काम करते हैं और अपने संसार को बढ़ाते हैं । चोरी करने वाले, इस तरह आठ प्रकार के कर्म-बन्धनों से अपने को बान्धकर, नर्क, तिर्यक, मनुष्य, देव-भव रूपी संसार में भटकते रहते हैं ।

इन वर्णन किये हुए सब पाप और कष्टों से बचने के लिये चोरी को त्यागना उचित है ।

अदत्तादान-विरमण व्रत

अदत्तंना दत्ते कृत सुकृत कामः किमापियः;
श्रुतःश्रेणीस्तास्मिन् वसति कल हंसी व कमले ॥
विपत्तस्माद्दूरं वृजति रजनीवाम्बर मणे ।
विंनीतं विद्येव त्रिदिवशिव लच्मीर्भजतिताम् ॥

शिखरिणीव्रत सिंदूर प्रकरण

अथात्—जो पुण्यकामी विना किसी की दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करते, उनमें शास्त्र-श्रेणी इस प्रकार रहती है, जैसे कमल पर कलहंसी। ऐसे लोगों से विपत्ति उसी प्रकार दूर हट जाती है, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर रात्रि हट जाती है। जिस तरह विद्या विनीत पुरुष को अंगीकार करती है, उसी तरह विना किसी की दी हुई वस्तु ग्रहण नहीं करने वालों को स्वर्गीय-लच्मी-स्वीकारती है।

चोरी का जो सूक्ष्म और स्थूल रूप संक्षिप्त मे बताया गया है, उससे निवर्त्तने के लिये इस अदत्तादान-विरमण व्रत का धारण करना उचित है। इस व्रत को धारण करके पालन करने वाला, इस लोक मे भी सुखी रहता है, विश्वासपात्र माना जाता है, यश तथा कीर्त्ति को प्राप्त करता है और परलोक मे भी सुख पाता है। इस व्रत की प्रशंसा और इससे होने वाले लाभ के विषय में प्रश्न-व्याकरण सूत्र मे कहा है—

> जंबू! दत्त मणुण्णाय संवरोनाम होइ ततियं सुव्वय महव्वयं पर दव्वहरणं पडिवरितं करणजुत्तं अपरिमिय माणंत तण्हामणुगय महिच्छामणवयण कलुस आयण सुग्गनिहियं सुसंजमिय मणहत्थ-पायनिहुयं निग्गंथं निठ्ठिकं निरुतं निरासव निब्भयं विमुच्चं उत्तम नरवसभ पवर बलवाग सुविहिय जण-सम्मत्तं परमसाहु धम्मचरणं ॥

अर्थात्—हे जम्बू! अन्य के द्रव्य का हरण करने की क्रिया से निवृत्ति-युक्त, यह तीसरा अदत्तादान-विरमण नाम का व्रत, सुव्रत और सम्मान देने वाला है। यह व्रत, तृष्णा और कलुषता का निग्रह करने वाला, इन्द्रियों को संयम में रखने वाला, तीर्थंकरों से उपदेशा हुआ उत्कृष्ट निग्रन्थ-धर्म है। यह व्रत, पाप के मार्ग को रोकने वाला है। इस व्रत को धारण करने वाला, सब मनुष्यों में उत्तम तथा बलवान है। इसके धारण करने

वाले को, कोई भय नहीं है और न उसे कोई दोष ही लग सकता है।

और लोगों ने भी इस व्रत की प्रशंसा करते हुए कहा है—

तम भिलपति सिद्धि स्तं वृणीते समृद्धिः
तम भिसरति कीर्तिर्मुंचते तं भवार्तिः।
स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तम्,
परिहरति विपत्तिर्यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥

मालिनीव्रतम् सि० प्र०

अर्थात—सिद्धि, उसकी अभिलाषा करती है, समृद्धि उसे स्वीकार करती है कीर्ति उसके पास आती है, सांसारिक पीड़ाएँ उसे त्याग देती है, सुगति उसकी स्पृहा (चाह) करती है, दुर्गति उसे नहीं देखती, और विपत्ति उसे छोड़ देती है, जो बिना दिये हुए यानी अदत्त को ग्रहण नहीं करता।

शास्त्र में बताये हुए पाँचों व्रत, एक दूसरे से इस प्रकार संबन्ध रखते हैं, कि एक भी व्रत का पूर्ण रीति से पालन करने पर सब व्रतों का पालन हो जाता है, और एक भी व्रत का खण्डन करने पर सब व्रतों का खण्डन हो जाता है। इसलिये शेष चार व्रत का पालन करने के लिये भी, इस व्रत को धारण करना, आवश्यक है।

शास्त्र में, अदत्तादान-विरमण के दो रूप बताये गये है। एक

सूक्ष्म, दूसरा स्थूल । सूक्ष्म व्रत साधु के लिए बताया गया है और स्थूल-व्रत गृहस्थ-श्रावकों के लिये । गृहस्थ-श्रावक सूक्ष्म-अदत्तादान-विरमण व्रत का पालन नहीं करसकते । क्योंकि, सूक्ष्म व्रत, तीन करण और तीन योग से धारण किया जाता है, तथा उसमें किसी की बिना दी हुई वस्तु मात्र को ग्रहण करने का त्याग करना होता है । सूक्ष्म अदत्तादान विरमण व्रत को धारण करते समय, साधु प्रतिज्ञा करते हैं—

> समणे भविस्सामि अणगारे अकिंचणे अपुत्ते अपसू परदत्त भोई पावकम्मं णो करिस्सामिति समुट्ठाए सव्वं भंते अदिण्णादाणं पच्चक्खामि ।
>
> आचा० द्वि० श्रु० १६ वाँ अ०

अर्थात्—हे पूज्य ! मैं, गृह, धन, पशु, पुत्र को त्याग कर, दूसरे का दिया हुआ भोगनेवाला साधु होता हूँ, इसलिये मैं सावधान होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अदत्तादान का पाप मैं नहीं करूंगा, किन्तु वेही चीजें भोगूँगा, जो दूसरे ने मुझे दी हो ।

> अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं सव्वंभंते ! महव्वए अदिन्नादाणं पच्चक्खामि से गामेवा नगरेवा रन्नेवा अप्पंवा बहुंवा अणुंवा थूलंवा चित्तमंतंवा अचित्तमंतंवा नेवसयं अदिन्नं गेण्हेज्जा

नेवन्नेहि अदिन्नं गिण्हावेज्जा अदिन्नं गिण्हंतेवि अन्नेन समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए' तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणंवोसरामि तच्चेभंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥

दशवैका० चौ० अ०

अर्थात–गुरू से शिष्य ने पूछा-भगवन! तीसरा महाव्रत कौन सा है ' गुरु ने कहा-तीसरा महाव्रत अदत्तादान से निवर्त्तना है। शिष्य ने पूछा–उसमें क्या करना पड़ता है ? गुरु ने कहा– ग्राम नगर या जंगल आदि में, थोड़ी या ज्यादा, छोटी या वड़ी, सचित्त या अचित्त वस्तु को किसी के दिये विना ग्रहण करे नही, दूसरे से ग्रहण करावे नही और ग्रहण करने वाले को भला समझे नहीं, मन से, वचन से और काय से। तव शिष्य कहता है–भगवन्! मैं अदत्तादान वुरा समझ कर आपके कथनानुसार उससे निवर्त्तता हूँ। मैं अदत्तादान का प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, और इस पाप को आत्मा से अलग करके तीसरे महाव्रत अदत्तादान-विरमण में उपस्थित होता हूँ।

सूक्ष्म व्रत धारण करने के समय साधु को इस प्रकार प्रतिज्ञा करनी होती है। इस प्रतिज्ञा के अनुसार, साधु विना दी हुई।

किसी वस्तु को नहीं ले सकते, फिर वह वस्तु चाहे गुरु की हो, शिष्य की हो, या और किसी की हो। जिस वस्तु पर किसी का अधिकार नहीं है, या जो वस्तु सार्वजनिक है, साधु, उसका उपयोग भी विना किसी की आज्ञा के नहीं कर सकते। क्योंकि ऐसी वस्तु पर साधु का अधिकार नहीं रहा है। संसार की सारी वस्तुओं पर से साधु अपना अधिकार उठा चुके हैं, इसलिये वे उसी वस्तु का भोगोपभोग कर सकते हैं, जो दूसरे ने दी हो। विना दी हुई, किसी भी वस्तु को, साधु अपने काम में नहीं ला सकते। साधु, यदि किसी को अपना शिष्य भी बनावेंगे तो उस शिष्य बननेवाले के अभिभावकों की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर। अभिभावकों की आज्ञा के विना शिष्य बनानेवाले साधु का यह महाव्रत भंग हो जाता है।

मतलब यह कि सूक्ष्म व्रत धारण करनेवाला, किसी की वस्तु को विना दूसरे के दिये अपने काम में नहीं ला सकता। गृहस्थ-श्रावक यदि सूक्ष्म व्रत धारण करे तो सार्वजनिक चीज तो क्या, घर की भी उन चीजों को नहीं ले सकता, जिन पर घर के किसी दूसरे आदमी का किंचित भी अधिकार है। इसलिये, जबतक वह गृहस्थ है, तबतक सूक्ष्म अदत्तादान विरमण-व्रत का पालन करने पर, उसका गृहस्थ-जीवन नहीं निभ सकता; इस बात को विचार कर, शास्त्रकारों ने गृहस्थ-श्रावकों के लिये स्थूल अदत्ता-

दान विरमण व्रत बतलाया है। उन्होंने, श्रावकों के लिये यह व्रत धारण करना आवश्यक बतलाया है।

> थूलग अदत्तादाणं समणोवासओ पच्चक्खाइ से अदिन्नादाणे दुविहे पन्नत्ते तंजहा—सचित्तादत्ता दाणे अचित्तादत्तादाणे अ।
>
> आवश्यक सूत्र अध्या० ६

अर्थात— श्रमणोपासक, स्थूल अदत्तादान का त्याग करे। स्थूल अदत्तादान दो प्रकार का है। एक सचित्त-अदत्तादान और दूसरा अचित्त-अदत्तादान।

टीकाकार ने, स्थूल अदत्तादान की व्याख्या करते हुए कहा है, कि दुष्ट अध्यवसाय पूर्वक अपने अधिकार से परे, अर्थात् दूसरे के अधिकार की वस्तु को, विना उस वस्तु के अधिकारी की आज्ञा के ग्रहण करना, स्थूल-अदत्तादान है। यह अदत्तादान, उक्त दो प्रकार का है। जिसमें जीव है, वह सचित्त है और सचित्त की चोरी करना, सचित्त-अदत्तादान है। सचित्त में, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटाणु, वीज, वृक्ष, आदि वे सब शामिल हैं, जिनमे जीव है। जिसमें जीव नहीं हैं, उसे, अचित्त कहते हैं। जैसे-सोना, चाँदी, ताँवा, पीतल, रत्न, कंकर, वस्त्र आदि। अचित्त की चोरी करना, अचित्त-अदत्तादान है।

शास्त्र ने, गृहस्थ-श्रावकों को स्थूल अदत्तादान-विरमण व्रत में

उस चोरी का त्याग बताया है, जिसे संसार मे चोरी कहते हैं और जिस चोरी के करने से चोरी करनेवाला, चोर कहा जाता है तथा लोग घृणा से देखते हैं। अर्थात् जिस पर अपना अधिकार नहीं है, किन्तु दूसरे का अधिकार है, उसे, विना उस अधिकारी की आज्ञा के लेने की चोरी का त्याग कराया जाता है। जो वस्तु सार्वजनिक है, जिस वस्तु पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं है, उसे लेने या उसका उपभोग करने का त्याग श्रावकों को नही कराया जाता।

मतलब यह, कि दुष्ट अध्यवसायपूर्वक दूसरे के हक़ को हरण करने की क्रिया से निवर्त्तना, स्थूल अदत्तादान-विरमण व्रत है। इस तीसरे व्रत के धारण करने में, जहाँ साधु तीन करण और तीन योग से अदत्तादान का पूर्णतया त्याग करते हैं, वहां श्रावक दो करण और तीन योग से स्थूल-अदत्तादान का त्याग करता है। जैसा कि आनन्द श्रावक ने किया था। यथा—

> तदाणंतरंचणं थूलयं अदिन्नादाणं पच्च-क्खाति जावजीवाए दुविहं तिविहेणं न करेति न कार-वेति मणसा वयसा कायसा ॥

उपा० सू० प्र० अ०

अर्थात—स्थूल मृषावाद त्यागने पश्चात् आनन्द श्रावक ने स्थूल-अदत्तादान का त्याग दो करण—करूंगा नहीं तथा करा-ऊँगा नहीं-और तीन योग—मन से, वचन से काय से किया।

स्थूल-अदत्तादान विरमण व्रत धारण करने पर, श्रावक के न तो सांसारिक काम ही रुकते हैं, और न वह स्थूल चोरी के पापों में ही पड़ता है। संसार में भी, वह प्रामाणिक और विश्वास पात्र माना जाता है। इसलिए श्रावकों को यह व्रत धारण करना ही उचित है।

बहुत लोग समझते हैं, कि हमारा काम बिना चोरी किये नहीं चल सकता। ऐसा समझना उसी प्रकार की कमज़ोरी और भूल है, जैसी कमज़ोरी और भूल नशेबाज की होती है—जो यह समझता है, कि बिना नशे के मेरा जीवन नहीं रह सकता। लेकिन बहुत लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें, भूल में की हुई चोरी की सहायता के बदले, हज़ारों रुपये मिलने पर भी, वे, उन्हें ठुकरा देते हैं। इसके लिए, एक दृष्टान्त का दिया जाना अप्रासंगिक न होगा।

एक नगर में, एक वकील बहुत होशियार माना जाता था। लोग, प्राय: उसी वकील को होशियार मानते हैं, जो न्यायाधीश के सामने चोर को साहूकार और साहूकार को चोर सिद्ध करने में निपुण हो। यह वकील, इसी प्रकार के होशियारों में से एक था, परन्तु इसकी स्त्री की प्रकृति इस विषय में इससे भिन्न थी।

एक दिन, वकील तो बैठा भोजन कर रहा था, और उसकी स्त्री पास ही बैठी हुई भोजन करा रही थी। इतने में ही, एक सेठ

आया। सेठने आकर, वकील के सामने पचास हज़ार रुपये के नोट रख दिये। वकील ने सेठ से पूछा, कि ये नोट कैसे हैं ? सेठ ने उत्तर दिया—आपने मेरे, विरुद्ध के मुकदमे में मेरी तरफ़ से पैरवी की और उसे खारिज करवादिया, उसका मेहनताना। वकीलने कहा—"मेहताना तो आप दे चुके हैं, यह और मेहनताना कैसा ?" सेठ ने, उत्तर में कहा—"वादी ने मेरे ऊपर पाँच लाख रुपये का दावा किया था। वास्तव में, मुझे वादी को पाँच लाख रुपये देने थे। यदि आप इतनी ज़बर्दस्त पैरवी न करते, तो मुझे वादी को पाँच लाख रुपये देने पड़ते; लेकिन आपकी पैरवी से मेरे पाँच लाख रुपये बच गये। मैंने विचारा, कि वकील साहब की पैरवी से जब मेरे पाँच लाख रुपये बचे हैं, तब मैं इन पाँच लाख रुपयों में से पचास हज़ार रुपये वकील साहब को भी शुकराने के तौर पर क्यों न देदूँ। यह विचार कर ही मैं ये नोट आप को देने आया हूँ।" यह कह कर और वकील को नोट देकर सेठ चल दिया।

वकील अपने मन में खुश होकर अपने आपकी प्रशंसा करने लगा, कि मैं कैसा क़ायदेबाज़ और चोर को साहूकार तथा साहूकार को चोर बनाने में चतुर हूँ। प्रसन्न मन से वकील ने अपनी स्त्री के भाव जानने के लिये उसकी ओर देखा। वकील को यह आशा थी, कि आज एक साथ और अनायास पचास हज़ार रुपये

आगये हैं, इस लिये मेरी स्त्री प्रसन्न हो रही होगी। प्रसन्नता देख ने के लिये ही वकील ने उसकी ओर देखा भी था, परन्तु अपनी स्त्री का मुख देखते ही, वकील की सारी आशा, चिन्ता मे परिणत हो गई। वकील ने देखा, कि मेरी स्त्री रो रही है और उसकी आँखों से आँसू टपक रहे हैं। आश्चर्य में पड़ कर वकीलने, अपनी स्त्री से रोने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा—मेरे रोने का कारण और कुछ नहीं, किन्तु ये नोट ही है; जो आपने अभी लिये है।

वकील—इनके पाने से तो और प्रसन्नता होनी चाहिए थी, क्योंकि, इतने रुपये के नोट आज अनायास ही मिले हैं, तथा इनके लिये परिश्रम भी नहीं करना पड़ा है– लेकिन तुम रो रही हो, यह क्यों ?

स्त्री— मैं, इसीलिए रो रही हूँ, कि ये नोट न्याय-पूर्वक किये गये परिश्रम के बदले में नहीं, किन्तु चोरी की सहायता के बदले में मिले हैं। आपने, इस सेठ को चोरी में सहायता दी, यानी आपने वादी को उसके पाँच लाख रुपये के वास्तविक हक़से वंचित रख कर, इस सेठ को, वादी का हक हरण करने में सहायता पहुँचाई, तब आपको ये रुपये प्राप्त हुए हैं। चोरी में सहायता देना, चोरी के ही समान पाप है। मैं, यह देख कर ही रो रही हूँ, कि मेरे पति, चोरी के महान-पाप में प्रवृत्त होकर धन

कमाते हैं, और अपने पाप के लिये पश्चात्ताप करने के बदले प्रसन्न हो रहे हैं।

वकील— संसार में ऐसा होता ही है। इसके सिवाय, यह वकालत का पेशा भी ऐसा है, कि इसमें ऐसा किये बिना काम नहीं चलता। तुम्हीं बताओ, कि यदि मैं ऐसा न करता, तो आज एक दम से, पचास हज़ार रुपये के नोट कैसे आ जाते ?

स्त्री— आपको इन पचास हज़ार के मिलने से इतना आनन्द है, तो जिसके पाँच लाख गये, उसे कितना दुःख होता होगा ? दूसरे को, उसके वास्तविक हक़ों से वञ्चित करके उपार्जन किया हुआ यह धन, क्या आपके साथ जाने वाला है ? क्या आपको पाप का भय नहीं है ? यदि आप, इन पाँच लाख का हक हरण करने वाले का पक्ष न लेकर, जिसका हक़ हरण होता था, उसका पक्ष लेते और उसे मुकदमा जितवा देते, तो क्या आपको मेहनताना न मिलता ? कदाचित ऐसा करने में आपको लाभ थोड़ा ही होता या बिलकुल ही न होता, तब भी अन्याय का पक्ष तो न होता। मैं, इस प्रकार चोरी से उपार्जन किये हुए धन से मौज करने की अपेक्षा, पीस-कूट कर ग़रीबी में दिन निकालना अच्छा समझती हूँ। मैं नहीं चाहती कि मेरे पति, मेरे लिये इस प्रकार अन्याय करके, नर्क की सामग्री एकत्रित करें। कृपा करके, आप अपने इन रुपयों को अलग रखिये, और न्याय पर विश्वास रख

कर भविष्य के लिये, ऐसे पाप से बचने की प्रतिज्ञा कीजिये।

वकील पर, उसकी स्त्री के उपदेश का बहुत ही प्रभाव पड़ा। उसने अपनी स्त्री से कहा—"यद्यपि मुझे पहिले यह पता न था, कि सेठ का पक्ष झूठा है, फिर भी मैं अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता हूँ और भविष्य के लिये प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जान बूझकर दूसरे को उसके हक़ों से वंचित रखनेवाले कार्य्यों में, मैं किसी को कदापि सहायता न दूँगा। इन नोटो को भी, मैं लौटाये देता हूँ।"

वकील ने, अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन किया, तो धर्म के प्रताप से, थोड़े ही दिनों में उसकी वकालत अच्छी चल निकली। उसने ख्याति भी खूब प्राप्त की और सम्पन्न भी हो गया।

मतलब यह, कि वकील ने उस सेठ के मुक़द्दमे की पैरवी भूल में ही की थी—उसे यह पता न था कि इसका पक्ष झूठा है—फिर भी अपनी स्त्री के उपदेश से, उसने उन नोटो को ठुकरा दिया और भविष्य के लिये उपरोक्त प्रतिज्ञा करली। इस प्रतिज्ञा के करने और जिस कार्य को वह आय का मार्ग समझता था, उसके छोड़ने पर भी, उसकी वकालत पहिले की अपेक्षा अधिक बढ़-चढ़ गई। इसलिये, यह समझना कि हमारा काम बिना चोरी किये नहीं चल सकता, नितान्त भूल है। बिना चोरी किये जो काम चलेगा, वह काम चोरी करके चलाये हुए काम से असंख्य-गुना श्रेष्ठ होगा।
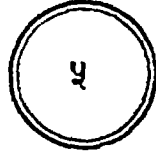
अतिचार

इस तीसरे व्रत-स्थूल अदत्तादान विरमण के पाँच अतिचार हैं। आनन्द श्रावक ने जब भगवान महावीर के पास श्रावक के बारह व्रत धारण किये थे, तब भगवान ने इस तीसरे व्रत के अतिचारों के विषय में श्रीमुख से फ़र्माया था—

> थूलग अदिन्ना दाणं वेरमणस्स पंचअइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा-तेनाहडे तक्करप्पओगे विरुद्ध रज्जाति कम्मे कूडतुल्लकूडमाणे तप्पडिरूवग ववहारे।

उपा॰ सू॰ प्र॰ अ॰

टीका—स्थूलकादत्तादान विरमणस्स श्रमणोपासके नामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समा चरितव्याः तद्यथा-स्तेनाहृतं तस्करप्रयोगः विरुद्ध राज्यातिक्रम कूटतुलाकूटमानं प्रक्षेपस्तत्प्रतिरूपकोव्यवहारः

अर्थात-स्थूलअदत्तादान के पांच अतिचार श्रावक के जानने योग्य हैं, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। वे अतिचार ये हैं-तेनाहडे या स्तेनाहृत, तक्करप्पओगे या तस्कर प्रयोग, विरुद्ध-रज्जातिकम्मे या विरुद्धराज्यातिक्रम कूडतुल्ल कूडमाणे या कूट-तुलकूटमानं, तप्पडिरूवगावववहारे या प्रक्षेपस्ततप्रतिरूपको-व्यवहार।

अतिचार तभी तक अतिचार है, जवतक कि उसमें वताये हुए काम संकल्प-पूर्वक न किये जावें। संकल्प-पूर्वक यानी जान-बूझकर इन्हीं कामों को करने से येही काम अनाचार की गणना में आ जाते हैं और अनाचार होते ही व्रत भंग हो जाता है! भग-वान ने इन अतिचारों को विशेषरूप से इसलिये वताया है कि अतिचार में वतायी हुई वातों का काम गृहस्थी में विशेष रूप से पड़ता है, इसलिये इन कामों को जानकर इनसे वचने की साव-धानी रखे, अन्यथा व्रत टूट जावेगा।

ऊपर कहे हुए पाँच अतिचारों में से पहिला अतिचार तेनाहडे या स्तेनाहृत है। टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

स्तेनाः—चौरास्तैराहृतं—आनीतं किञ्चित् कुंकुमादि देशन्तरात् स्तेनाहृतं तत् समर्घमिति लोभाद् गृह्णतोऽतिचारः।

अर्थात्—चोरों द्वारा हरण की हुई वस्तु-फिर वह वस्तु किंचित कुंकुम ही क्यों न हो, और देशान्तर से ही हरण करके

क्यों न लायी गयी हो, लोभ से ग्रहण करना 'स्तेनाहृत' या 'तेनाहडे' अतिचार है।

कई लोग वस्तु को सस्ती देखकर उसके विषय में बिना कुछ अनुसन्धान किये ही उसे खरीद लेते हैं। परन्तु ऐसा करने में कभी न कभी चोरी की वस्तु खरीद में आजाना स्वाभाविक है। जान-बूझ कर चोरी की वस्तु खरीदना चोरी के ही समान पाप है। इस प्रकार से चोरी की वस्तु खरीदने वाले को राज्य भी चोर के ही समान दण्ड देता है और चोरी की न जान कर साहूकारी रीति से खरीदी हुई वस्तु को बिना मूल्य लौटाये ही ले लेता है। इसलिए प्रत्येक वस्तु को लेने के समय यह विश्वास कर लेना उचित है, कि यह वस्तु चोरी की तो नहीं है। चोरी की वस्तु भूल से भी न खरीदनी चाहिए, अन्यथा यह अतिचार हो जावेगा!

यहाँ प्रश्न होता है कि चोरी की वस्तु के विषय में मोटे रूप से कैसे जाना जा सकता है कि यह वस्तु चोरी की है? इसके लिये सबसे बड़ी पहिचान तो वस्तु का बाजार भाव से विशेष कम दाम में मिलना है। जिस वस्तु का बाजार में एक रुपया भाव है, वही वस्तु यदि आठ-बारह आने में मिल रही है, तो यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि यह वस्तु कैसी है, जो इतनी कम कीमत में बिक रही है। इस सन्देह पर से अनुसन्धान किया

जावे तो चोरी की वस्तु होने पर बिना मालूम हुए न रहेगा। संसार में जब कोई किसी की वस्तु बाजार भाव से कम में माँगता है। तब वह चीज लाने वाला उस माँगने वाले से प्रायः कहता है कि 'यह चीज चोरी की नहीं है' या कहता है-'सस्ती चीज लेनी हो तो कहीं चोरी की ढूँढो। मतलब यह कि बाजार भाव से सस्ती प्रायः वही चीज मिलती है, जो चोरी की हो। वैसे तो. जिसका काम रुका होता है वह भी बाजार भाव से सस्ती चीज देता है, परन्तु ऐसी चीज इतनी सस्ती नहीं होती जितनी सस्ती चोरी की चीज होती है। इसलिए चोरी की चीज का पहिचान में आना कोई कठिन बात नहीं है। वस्तु के विषय में सन्देह हो और जाँच करने पर भी उसके विषय में विश्वास न हो, तो ऐसी वस्तु का न खरीदना ही अच्छा है।

दबा-छिपा कर बेचने वाले लोगों की चीज के विषय में भी इसी प्रकार का सन्देह हो सकता है। ऐसी वस्तु भी बिना विश्वास किये लेना ठीक नहीं।

दूसरा अतिचार तक्करप्पओगे या तस्कर प्रयोग है। इसकी व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते हैं—

> तस्कराः—चौरास्तेषां प्रयोगः हरण क्रियायां प्रेरणमभ्यनुज्ञा तस्कर प्रयोगः।

अर्थात—चोरों को चोरी करने की प्रेरणा करनी 'तस्कर प्रयोग' या 'तक्करप्पओगे' अतिचार है

चोरो को चोरी की प्रेरणा करनी चोरी का अतिचार है। फिर वह प्रेरणा चाहे उत्तेजना देकर की जावे या चोरी के कार्य में किसी प्रकार से सहायता देकर। राजनियमानुसार भी चोरी की प्रेरणा करनेवाला चोर के ही समान दण्डय माना जाता है। श्रावक का इस अतिचार से वचने के लिये सावधान रहना उचित है।

चोरों को चोरी में सहायता देकर चोरी की प्रेरणा करने वाले लोग आज कल वहुत सुने जाते हैं। जैसे, किसी चोर को चोर जानते हुए भी राजकर्मचारियो का उस चोर को अचोर ठहराना और ऐसे ही चोर जानते हुए भी-केवल मेहनताने के लिए-वकीलों का चोर को निर्दोप ठहराने की चेष्टा करना। ऐसा करना प्रकारान्तर से-चोरी में सहायता करके-चोरी की प्रेरणा करना है, जो चोरी के ही समान पाप है। श्रावक को इस विपय में सावधान रहने की जरूरत है, जिससे भूल में भी चोरों को चोरी में सहायता देकर चोरी करने की प्रेरणा स्वरूप यह अतिचार न हो। क्योंकि, केवल चोरी करने वाला ही चोर नहीं माना जाता है, किन्तु चोरी में सहायता या चोरी की प्रेरणा करने वाले भी चोर हैं। जैसे—

चौरः चौरापका मन्त्री, भेदकः काणक क्रयी।
अन्नदः स्थानदश्चैव, चोरः सप्त विधः स्मृतः॥

अर्थात्—सात प्रकार के लोगों की गणना चोर में है। एक

चोरी करनेवाला दूसरा चोरी की प्रेरणा करने वाला, तीसरा चोरी की सम्मति देने वाला, चौथा चोरी के लिये भेद बताने वाला, पाचवाँ चोरी का माल खरीदने वाला, छठा चोरी करने के लिये अन्न देने वाला, और सातवाँ चोरी करने के लिये स्थान देने वाला।

तीसरा अतिचार विरुद्धरज्जातिकम्मे या विरुद्धराज्यातिक्रम है। इस अतिचार की व्याख्या करते हुए टीकाकार लिखते हैं।

विरुद्ध नृपयोर्यद् राज्यं तस्याति क्रमः अतिलङ्घनं विरुद्धराज्यातिक्रमः।

अर्थात्—जो राजा लोग परस्पर विरोध रखते हैं, यानी लड़ते हैं-उनके राज्य को एक दूसरे राज्य वाले विरुद्ध नृपराज्य कहते हैं। ऐसे विरुद्ध राज्य का उल्लंघन करना-यानी लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य में आना जाना 'विरुद्ध रज्जाइकम्मे' या 'विरुद्ध राज्यातिक्रम' है। ऐसा करने में राजा और धर्म दोनों की मर्यादा भंग होती है।

लड़ाई के समय सुव्यवस्था के लिये विरुद्ध राज्य में आवागमन नहीं किया जाता है। क्योंकि ऐसा करने में एक राज्य में दूसरे राज्य का भेद जाने का भय रहता है। इसलिये श्रावक को इस अतिचार से बचने की सावधानी रखनी चाहिए।

कई लोग इस अतिचार का अर्थ राजा के विरुद्ध काम करना लगाते हैं, लेकिन इस अतिचार का यह अर्थ नहीं हो सकता।

यदि यह अर्थ लगाया जावे, तो वहुत उलट पलट हो जावे और श्रावक को अपने अन्य व्रत पालन करने मे वड़ी असुविधा हो। उदाहरणार्थ—राजा कभी यह आज्ञा दे, कि आजकल आवकारी विभाग की आय कम हो गई है अत. सब लोग शराव पिया करें तो ऐसी दशा में क्या श्रावक शराव पीने लगेंगे? यदि नहीं, तो फिर ऐसी आज्ञा देने वाले राजा का विरोध करने से अतिचार कैसे हो सकता है? वल्कि ऐसे हुक्म या ऐसे राजा का विरोध न करना पाप का भागी होना है और इसका फल प्रजा को उसी प्रकार भोगना पड़ता है, जिस प्रकार राजा श्रेणिक की उस आज्ञा का-जिसके अनुसार साहूकारो के छ लड़के स्वच्छन्द वना दिये गये थे—विरोध न करने के कारण राजगृही की प्रजा को भोगना पड़ा। यदि राजगृही की प्रजा राजा श्रेणिक की ऐसी आज्ञा का विरोध करती तो अर्जुन माली के हाथ से प्रजा में के ११३४ निरपराध मनुष्य न मारे जाते। इसलिये इस अतिचार का अर्थ राजा के विरुद्ध काम करना, नहीं हो सकता। हाँ, राज्य के विरुद्ध काम करना चाहे इस अतिचार का अर्थ लगा लिया जावे। क्योंकि 'राज्य' देश की सुव्यवस्था का नाम है। राजा और राज्य शब्द के अर्थ मे अन्तर है। राजा वह कहलाता है, जो देश की सुव्यवस्था के लिये नियत किया जावे। जिस देश मे सुव्यवस्था नहीं है, वहाँ के लिये-राजा के होते हुए भी कहा जाता है कि

'अमुक जगह अराजकता फैली हुई है' अर्थात् सुव्यवस्था नहीं है। यदि यह अतिचार राजा के विरुद्ध काम करने का भी मान लिया जावे, तब भी शास्त्रीय दृष्टि से राजा वही है, जिसे बहुजन समाज देश की सुव्यवस्था के लिये नियत करे। जिस राजा का बहुजन समाज विरोध करता है, परन्तु वह अपनी तलवार के जोर से राजा बना हुआ है और लोग भय के मारे उसे राजा मानते हैं, ऐसा राजा शास्त्रीय दृष्टि से राजा नहीं कहला सकता। मतलब यह कि इस अतिचार का अर्थ राजा के विरुद्ध काम करना नहीं, किन्तु विरुद्ध राज्य का उल्लंघन करना है।

चौथा अतिचार कूडतुल्ल कूडमाणे या कूटतुला कूटमानं है। इसकी व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते हैं—

> तुला प्रतीतामानं—कुडवादि कूटत्वं-न्यूनाधिकत्वं न्यूनया ददतोऽधिकया गृह्णतोऽतिचारः।

अर्थात्—तराजू से तौल कर या नाप से नाप कर कम देना या ज्यादा लेना 'कूडतुल्ल कूडमाणे' या 'कूटतुला कूटमानं' अतिचार है।

नियत बाट पैमाने से कम ज्यादा वजन या नाप के बाट पैमाने रखकर उनसे तौलना नापना, या पूरे बाट पैमाने रखकर भी डण्डी मारना, लेने-देनेवाले को धोखा देकर कम ज्यादा नापना तौलना, चोरी है। भूल या असावधानी से कम ज्यादा

नापना तौलना अतिचार है। इसलिये श्रावकों को इस विषय में सावधानी रखनी उचित है, जिसमें अतिचार न हो।

सुनने में आता है कि कई लोग दो तरह के बाट-पैमाने रखते हैं। एक तो नियत बाट-पैमाने से कम होते हैं, और दूसरे अधिक। जब किसी को कोई वस्तु देनी होती है, तब तो उन बाट-पैमानों से तौलते नापते हैं जो कम होते हैं और जब किसी से लेनी होती है, तब उन बाट-पैमानों से तौल नापकर लेते हैं, जो अधिक होते हैं। कई लोग पूरे बाट-पैमाने रखकर भी तौलने नापने में ऐसी चालाकी से काम लेते हैं, कि दी जानेवाली वस्तु तो कम जावे और ली जानेवाली वस्तु अधिक आवे। तौलने नापने में किस तरह बेईमानी की जाती है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

कहा जाता है कि संग्रामसिंह नामके एक राजपूत सज्जन थे। उनकी दशा बहुत गरीबी की थी। वे थे तो गरीब, परन्तु थे सत्य भक्त। उनकी स्त्री भी बड़ी पतिव्रता थी। दम्पति, बड़े—धैर्य-पूर्वक अपनी गरीबी के दिन काटते थे, गरीबी से घबराकर सत्य छोड़ने का तो कभी विचार भी नहीं करते थे।

संग्रामसिंह की स्त्री, गर्भवती थी। जब प्रसवकाल समीप आया, तब उसने अपने पति से कहा, कि-"संतान प्रसव के पश्चात् ही मुझे अजवायन की आवश्यकता होगी। घर में अज-

वायन था तो सही, परन्तु वह कहीं ऐसी जगह रखा गया है, जो मिलता नहीं है। ठीक समय पर अजवायन के लिये दौड़-धूप न करनी पड़े, इसलिये कहीं से एक सेर अजवायन उधार ले लेते, तो अच्छा होता।" पत्नी की बात के उत्तर में संग्रामसिंह ने कहा-मैं किसी से उधार लेना अनुचित समझता हूँ, इसलिये, जब पास पैसे होंगे, तब मोल ले आऊँगा। संग्रामसिंह की पत्नी ने, फिर प्रार्थना की, कि अपन गृहस्थ हैं, इसलिये ऐसे समय में उधार लेने में कोई हर्ज तो नहीं है-क्योंकि अजवायन की आवश्यकता शीघ्र ही होगी, और पैसों का क्या ठीक है, कि कब हाथ में आवें! फिर भी यदि आप उधार लाना ठीक न समझें, तो घर का कोई बर्तन बंधक रखकर लेआवें।

घर की एक थाली बंधक रखकर अजवायन लाने के लिये, संग्रामसिंह बाजार गये। एक दूकान पर जाकर, संग्रामसिंह ने दूकानदार से कहा, कि—मुझे एक सेर अजवायन दे दीजिये। संग्रामसिंह की गरीबी दशा को दूकानदार जानता था, इसलिये उसने—यह समझकर, कि ये अजवायन उधार माँग रहे हैं—संग्रामसिंह की बात सुनी-अनसुनी कर दी। संग्रामसिंह के दो तीन बार कहने पर भी, जब दूकादार ने ध्यान नहीं दिया, तब संग्रामसिंह दूकानदार का अभिप्राय ताड़ गये, और पास की थाली दूकानदार को बताते हुए उससे कहा कि मैं, अजवायन उधार लेने नहीं

आया हूँ, किन्तु उसकी क़ीमत के बदले यह थाली बंधक रखकर अजवायन लेने आया हूँ। थाली देखकर, दूकानदार ने संग्रामसिंह की बात सुन एक सेर अजवायन तौल दिया, और अजवायन की क़ीमत के बदले, थाली बन्धक रखली।

कपड़े में अजवायन लेकर, संग्रामसिंह अपने घर गये। घर पहुँचने पर, उनकी स्त्री ने उनसे कहा, कि मैंने आप को अकारण ही कष्ट दिया; घर मे रखा हुआ अजवायन मिल गया, अतः इस अजवायन की आवश्यकता नहीं रही। पत्नी की बात सुनकर, संग्रामसिंह वैसे ही दूकानदार के यहाँ लौट गये, और उससे कहा-कि मेरे घर में अजवायन मिल गया है, इसलिये आप अपना अजवायन लौटा लीजिये। दूकानदार नाराज़ होकर संग्रामसिंह से कहने लगा कि मैं, बेची हुई चीज़ नहीं लौटाता, अब इस अजवायन का तुम चाहे जो करो। संग्रामसिंह ने नम्रता-पूर्वक दूकानदार से कहा—कि 'आपके अजवायन का कुछ बिगड़ा तो है नहीं। अभी ही ले गया और अभी ही लौटा लाया हूँ। मेरे यहाँ जब अजवायन मिल गया तब इस अजवायन को क्या करूँगा? क्या ठीक है कि पैसे कब हाथ में आवें, और तब तक एक बर्तन आपके यहाँ बन्धक रखा रहेगा, जिसके बिना घर में कष्ट होगा। यद्यपि आपकी कोई हानि तो हुई नहीं है, फिर भी, यदि आप चाहें, तो नुकसान स्वरूप मेरे से कुछ पैसे-ले लीजिये!'

संग्रामसिंह की अन्तिम बात मानकर, दूकानदार ने कृपा दिखाते हुए अजवायन वापस लेना स्वीकार किया। उसने अजवायन को फिर तौला, और जिसे उसने सेर भर कहकर दिया था, उसे ही तीन पाव ठहराकर संग्रामसिंह से कहने लगा-कि तुम बेईमानी करते हो? पाव भर अजवायन घर रख आये और अब लौटाने आये हो? संग्रामसिंह ने कहा—मैं, अजवायन को जैसा ले गया था वैसा ही लौटा लाया हूँ। इसमें से एक दाना गिरने भी नहीं दिया है। निकालना तो दूर रहा। ऐसी दशा में, एक दम से पावभर अजवायन कैसे कम हो गया? चोर दूकानदार, संग्रामसिंह की इस बात पर कब ध्यान देने लगा था। दूकानदार की यह बेईमानी देखकर, संग्रामसिंह को संसार से घृणा हो गई। वे, दूकानदार को अजवायन लौटाकर, थाली भी उसीके यहाँ छोड़ आये और घर आकर, संसार से विरक्त हो गये। उनके नामसे बना हुआ निम्न पद आज भी गाया जाता है।

संग्राम कहे सुण साह जी, है वो को वोई सेर।
लेता देता पाव को, पड़्यो किसी विधि फेर?
पड़यो किसी विध फेर कमी नहीं राखी कॉई।
तोवा वार हजार, इसी थे करी कमाई॥
साहव लेसो मॉगसी, लेसी मूँडो फेर।
संग्राम कहे गुण साह वाँ, है वो को वोई सेर॥

मतलब यह, कि कम ज्यादा तौल कर लेना देना, चोरी है। श्रावको को, इस अतिचार से बचते रहने की सावधानी रखनी चाहिए।

पाँचवाँ अतिचार तप्पडिरूवगववहारे या तत् प्रति रूप व्यवहार है। इसकी व्याख्या टीकाकार ने इस प्रकार की है—

तेन अधिकृतेन प्रति रूपकं सदृशं तत् प्रति रूपकं तस्य विविध मवहरणं व्यवहारः प्रक्षेपस्तत् प्रतिरूपको व्यवहारः यद्यत्र घटते व्रीह्यादि घृतादिषु पल ञ्जीवसादि तस्य प्रक्षेप इतियावत् तत् प्रति रूपकेण वा वसादिना व्यवहरणं तत् प्रतिरूपक व्यवहारः।

अर्थात्—किसी अच्छी वस्तु में उसी वस्तु के सदृश या उसमें निभने-वाली हल्की वस्तु मिला कर देना 'तप्पडिरू वग ववहारे' या 'तत्प्रतिरूप व्यवहार' अतिचार है।

किसी अच्छी वस्तु में हल्की वस्तु का संमिश्रण करना, या हल्की वस्तु में थोड़ी सी अच्छी वस्तु मिलाकर उसे अच्छी कह कर देना, या अच्छी वस्तु का नमूना दिखाकर हल्की वस्तु देना, आदि कार्यों की गणना चोरी मे है। असावधानी में यदि ऐसा हो जावे, तो अतिचार है।

आजकल, इस अतिचार को अनाचार के रूप में सेवन करने की बातें बहुत सुनाई देती हैं। पैसा कमाने के लिये कई

लोग अच्छी वस्तु में हल्की वस्तु का संमिश्रण कर देते हैं। जीरे में रेत मिलाना, रुई या कपास में पानी छिटक कर उसे अधिक वजन का बनाना, घी मे खोपरे या मूँगफली का तेल या विजिटेबिल घी मिलाना, शक्कर रंग आदि में आटा या रेत मिलाना, इसी प्रकार नमूने के विरुद्ध हल्की वस्तु देना, देशी कहकर विदेशी और पवित्र कहकर अपवित्र चीज देना आदि बातें बहुत सुनी जाती हैं। ऐसा करना चोरी है, अतः श्रावकों को सावधानी रखनी चाहिए। अन्यथा भूल में भी इन कामों के होने पर अतिचार हो जावेगा।
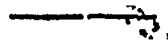
उपसंहार ।

इस तीसरे व्रत को धारण करने से होनेवाले लाभ और धारण न करने से होनेवाली हानि का इस पुस्तक में दिग्दर्शन कराया गया है। मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि इस व्रत को धारण करें। इस व्रत के धारण करने पर जीवन नीतिमय बन जाता है। यदि संसार के सब मनुष्य इस व्रत को धारण करके पूर्ण-रीति से पालन करने लगें, तो अशान्ति सदा के लिये नष्ट हो जावे।

व्रत धारण करने से पूर्ण लाभ तभी है, जब व्रत का निरति-चार पालन किया जावे। इसलिये व्रत धारण करनेवाले को व्रत में अतिचार न होने देने की विशेष रूप से सावधानी रखनी चाहिए। जो लोग इस व्रत का निरतिचार पालन करते हैं, उनका सदा कल्याण ही कल्याण है।

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!